वैदिक यज्ञ, एक अद्‌भुत सामाजिक एवं अध्यात्मिक प्रयोग

"अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवतृत्विजम्" ये ऋग्वेद की शुरुवात है। वैदिक संस्कृति में अगर किसी बात को बार-बार उद्‌धृत किया गया हो, तो वह है अग्नि।

वैदिक काल में अग्निपूजा ही सर्वश्रेष्ठ ईशपूजा मानी जाती थी। अग्नि का उपासक मोक्ष को प्राप्त होता है। यह बहुत पुरानी मान्यता थी। इसी अग्निपूजा से निर्मित हुआ एक अलौकिक और समाजाभिमुख प्रयोग याने यज्ञ।

"यज्ञ" शब्द सुनने के बाद सामान्य लोगों के आँखों के सामने एक विशिष्ट दृश्य खडा होता है। होम-हवन, मंत्रोच्चार, आहुतियाँ, भोजन, बलिदान ई. अनगिनत प्रकार कल्पनाओं में आते हैं। और वह स्वाभाविक भी है। क्योंकि इससे अलग, जिससे समाज का नैतिक एवं अध्यात्मिक विकास हो सकता है, ऐसा कुछ यज्ञ में है यहकल्पना ही नष्ट हो गई है। और यज्ञ का स्वरुप भी मात्र कर्म कांड तक और उपचार मात्र ही के रुप में बाकी रह गया है।

वैदिक काल में होनेवाले यज्ञ आजकल के तथाकथित यज्ञों से भिन्न थे। उनके स्वरूप में आमूलाग्र परिवर्तन था। सिर्फ अंधश्रद्धा के उपर आधारित उनका स्वरुप नहीं था। समाजशास्त्रों, और बुद्धिजीवियों को भी सोचने पर मजबूर करनेवाला उसका रूप था। लेकिन उस रुप को जानने के लिए पूर्वग्रहित बुद्धिसे अध्ययन करने की जरुरत है।

एक बहुत ही सामान्य घटना सर्व सामान्यत: यज्ञ का हेतु स्पष्ट करती है। उस जमाने में जब जब यज्ञ का आयोजन किया जाता था, तब तब असुर याने राक्षस लोग उस यज्ञ-कार्य में विघ्न उपस्थित करते थे। सचमुच अगर सोचा तो इन राक्षसों को यज्ञ में बाधा पहुँचाने की जरूरत क्यों थी? यदि यज्ञ द्वारा ऋषियों को सिर्फ स्वर्गप्राप्ती ही होनेवाली थी तो इसमें राक्षसों को क्या आपत्ति होती? क्योंकि मूलत: जिन्हे स्वर्ग की कल्पना मंजूर नहीं और सिर्फ भौतिक सुखप्राप्ति की ओर ही जिनका लगाव है उन्हें यज्ञ में दखल अंदाजी देने की जरुरत ही क्यों होती? लेकिन इसका जबाब स्पष्ट है। और वो है कि असुरों का कुछ नुकसान होता था। "राक्षस" शब्द का अर्थ "रक्षामि" मैं तुम्हारा रक्षण कर्ता हूँ। ऐसा बोलनेवाला, आजकी भाषा में दादा। इन दादा लोगों की समाज पर सत्ता थी, अंकुश था और इससे समाज में हमेशा भयगंड छाया रहता था। बकासुर जैसे ये लोग लोगों का छल करते थे। और उनसे हप्ता वसूला करते थे।

यज्ञों के द्वारा ऋषि इन लोगों में जाते और उनको ढाढस बाँधते थे। उनमें अस्मिता निर्माण करते। "तू किसी का (भगवान का) है.और तेरा रक्षण कर्ता तेरे भीतर ही है। इसीलिए किसी के दबाव से घबराने की जरूरत नहीं। योग्य समय पर योग्य बल भगवान तुझे अवश्य देंगे।

ऐसे तेजस्वी विचार और शिक्षा देकर लाचार समाज में वे शेर की वृत्ती पैदा करते थे। इसका नतीजा बिल्कुल सच था। और वो याने राक्षसों का दबाव नष्ट होना। और राक्षस इन बातों को कैसे सह सकते थे। और इसी बात से अगर उन्होंने यज्ञ में बाधाएँ खडी की तो इसमें अचरज की कोई बात नहीं है।

आजकल "यज्ञ" शब्द उच्चारने पर तथाकथित समाज

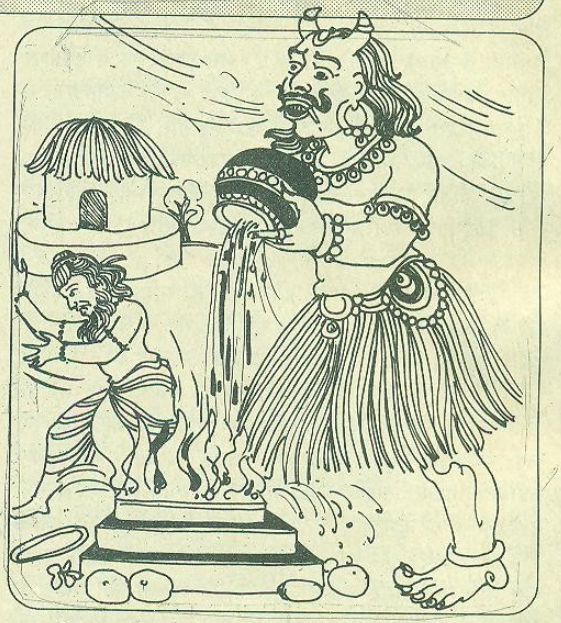

सुधारकों को बडी आपत्ति होती है। वे ये सोचते है कि यज्ञ मात्र एक कर्मकांड है और इससे समाज का कोई भला नहीं हो सकता। लेकिन अगर प्राचीन वैदिक यज्ञ की पार्श्व भूमि का गहन अध्ययन किया तो यज्ञ के महान योगदान की कल्पना आती है। आजकल ऐक्य, एकता इन शब्दों में नारे बडे जोर जोर से लगाए जाते हैं। लेकिन उसका अंशमात्र भी देखने को नहीं मिलता। हिंदुस्तान में किन्ही भी दो धर्मों में एकता नहीं, बहुभाषिय लोगों में भी वो नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि सभी दृष्टियों से एक-समान कार्यक्रम की घोषणा करनेवालें राजकीय गुटों में भी ऐक्य का अभाव ही है। ऐसे इस काल में भी आसेतुहिमाचल प्राचीन वैदिक यज्ञोंद्वारा प्रचलित हुए वैदिक साहित्य एवं संस्कृति का स्वरुप एक सा है। यह ही बात यज्ञों की सार्थकता एवं महत्ता स्पष्ट करती है।

यज्ञों द्वारा ऋषियों ने एक ही समय में अनेक हेतु साध्य किए। सर्वप्रथम उन्होंने विविध प्रकार की देवि-देवताओं को माननेवाले विविध गुटों से संपर्क किया और उन्हें एकत्रित किया। इन लोगों में नाग, रुद्र, बैल, वृक्ष ई. नानाविध देवताओं का प्रसार था। इन्हें एकत्रित लाने के वास्ते ऋषियों ने निम्नलिखित उपदेश किया।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। (ऋग्वेद १०/१९१/२)

अर्थ : "(आप सब लोग) एक साथ आओ, एक साथ चलो, एक साथ बोलने लगो, आपका मन भी एक सा ही हो जाए। जिसप्रकार (आपके) देवता लोग (पहले जमाने से) एक साथ आकर अपना अपना कार्य-भार सँभालते थे।"

(क्रमश:)

❑ श्री किशोर परशुराम लिमये

वैदिक यज्ञ एक अद्‌भुत सामाजिक एवं अध्यात्मिक प्रयोग

(गतांक से आगे)

समानो मंत्र: समिति: समानी समानं मन: सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रं अभिमन्त्रये व: समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।

(ऋग्वेद १०/१९१)

अर्थ: (आपका) मंत्र समिती, मन, चित्त एवं विचार एक ही रहने दो, इसी प्रकार आपकी उपासना में भगवान का उपहार भी एक ही रहने दो।"

ये सिर्फ नारी नहीं थे। ये प्रत्यक्ष वस्तुस्थिती थी। विविध प्रकार की मान्यताओं में जकडे मानव-समुदायों को एक सूत्र में पिरोना बहुत ही कठिन बात है। और यह असाधारण कर्म ऋषियों ने जिस माध्यम से साध्य किया वह माध्यम था यज्ञ।

वैदिक यज्ञों के उपर हमेशा यह दोषारोपण किया जाता है कि उसमें पशुओं की बलि चढाई जाती थी। और उस प्रकार का वर्णन भी प्राय: वेदों में पाया जाता है। उसे पढ़कर आजकल के समाजशास्त्री ये निष्कर्ष निकालते हुए नहीं झिझकते कि यज्ञों द्वारा ही हिंसा की शुरूवात हुई। लेकिन ये बात साफ तौर पर गलत और हास्यास्पद है। इसके विपरीत यह कहना उचित होगा कि वैदिक यज्ञों में होनेवाली हिंसायें तो अहिंसा के मार्ग पर मानव-समुदायों को ले जानेवाली पहली प्रगति थी।

उपरोक्त विविध मानव-समुदाय अपने देवी-देवताओं को खुष रखने के वास्ते बडे पैमाने पर अक्सर पशुओं की बलि चढाते रहते थे। उनमें कभी कभी नरबलि भी चढाये जाते थे। आज इसकी कल्पना नहीं है, लेकिन संशोधन के उपरांत ये बातें स्पष्ट होती हैं। इस प्रकार प्रचंड पैमाने पर चारो तरफ चल रहे इस नृशंस हिंसा को रोकने का कोई ना कोई मार्ग ढूँढ़ने पर ऋषि लोग मजबूर हुए। लेकिन उसी प्रकार आम लोगों की श्रद्धाओं को या मान्यताओं को भी चोट पहुँचाने से काम बन सके ऐसा नहीं था। क्योंकि मान्यताओं को सही दिशा प्रदान करने का उनका हमेशा प्रयत्न रहा करता था, न कि उन्हें मिटा देने का। इसी वजह से उन्होंने लोगों को सर्वप्रथम विविध देवतावादी की ओर से एकेश्वर वाद की तरफ लाने का प्रयास किया। निम्नलिखित मंत्र इसके लिए मननीय है।

इन्द्रं मित्रं वरुणम् अग्निमाहु: अथो दिव्य: सुपर्णो गुरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहु:।।

(ऋग्वेद १/१६४/४६)

अर्थ: "इंद्र मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्ण, यम आदि जो विविध देवताएँ हैं वे वास्तव में एक ही हैं, लेकिन ज्ञानी लोग उन्हें भिन्न पद्धति से उधृत करते हैं इतना ही।"

ऋषि क्रान्तदर्शी थे। विविध मान्यताओं के सैकडों मानव-समुदायों में संस्कृति को ले जाना और उनमें एकवाक्यता लाना यह उनका ध्येय था। इन विविध गुटों में अपने अपने देवताओं को खुष रखने के वास्ते अगणित पशुओं को हवन करने की प्रथा रहती थी। इसकी वजह से हिंसा का आम प्रमाण बहुत ही बढ गया था। ऐसे समय में इस हत्याकांड को रोकने के लिए ऋषियों ने एक सुंदर रास्ता निकाला और उन्होंने इस पशु बलि को यज्ञों में स्थान दिया। वही है वेदोक्त यज्ञों में होनेवाला पशु-बलिदान।

वेदों के दोष ढूँढने वाले बोलते हैं कि वेदों ने तो यज्ञ में पशुहिंसा का आदेश दिया है। इसीलिए वेद हिंसा के लिए प्रोत्साहित करते हैं, लेकिन ये गलत मत हैं। किसी भी बात की गहराई से विचार होना चाहिए। उस समय की परिस्थिति को मध्यनजर रखते हुए उसका विचार होना चाहिए।

ऋषियों ने अगर उस समय लोगों को हिंसा रोकने का आदेश दिय होता तो उसका कोई असर नहीं होता। और उनका संस्कृति प्रसार का कार्य भी रुक जाता। इसीलिए हिंसा को प्रतिनिधिक तौर पर यज्ञ में स्थान देकर चारों तरफ चल रहीं अंधाधुंद हिंसा पर उन्होंने रोक लगा दी। और समाज में से अस्सी प्रतिशत हिंसा को बंद किया। लोगों के गले ये बात उतरे और उन्हें ये महसूस हो कि यज्ञसे उनकी देवियाँ भी प्रसन्न हुई हैं। इसके लिए ऋषियों ने एक उपचार यज्ञ में रख दिया, और वो था सभी देवी देवताओं को यज्ञ में आमंत्रित करने का।

हिंसा को समाज में धीरे धीरे पूरी तौर से उखाड देना है। ये बात ऋषियों के ध्यान में थी ही। क्योंकि वेदोक्त त्रिसुपर्ण सूक्त में [illegible] होना चाहिए। जिसको बलि यज्ञ में चढाया जाय इसका वर्णन वे 'मन्यु: पशु:' ऐसा करते हैं। याने क्रोधरुप पशु का हवन होना चाहिए।

समाजमें लोगों में अस्मिता खडी करनेवाले ये यज्ञ ऋषियों ने जगह जगह पर किए। इनके द्वारा उन्होंने भारत के विविध मानव-समुदायों को एक संस्कृति में पिरोने का प्रयास किया। वैदिक साहित्य का प्रसार किया। प्रबोधन किया। समाज में जागृति एवं नवचैतन्य लाया। लोगों का अज्ञान दूर करने का प्रयास किया। राष्ट्र को एक निष्ठा प्रदान की।

आज यज्ञ का स्वरुप बदल चुका है। कर्मकांडी लोग अंधश्रद्धा से यज्ञ करते हैं और बुद्धिवादी लोग इसे निरर्थक समझते हैं। लेकिन सश्रद्ध विचारवंतोंने यज्ञ के सामाजिक महत्व पर आज की दृष्टि से संशोधन करना जरूरी है। और इस समय के लिए अनुरुप ऐसा यज्ञ का स्वरूप बनाना चाहिए। क्योंकि यज्ञ का तंत्र बदलने पर भी उसका जो मंत्र है वह आज भी सामाजिक समता एवं बंधुता लाने के लिए काम आ सकता है।

श्री. किशोर परशुराम लिमये
ओझर-टाऊनशिप
नासिक